बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 13

सप्ताह का हासिल

बीते कुछ दिनों में जो सैन्य गतिविधियां नजर आईं, उनका सबसे बड़ा सकारात्मक हासिल संभवत: भारत की नई कूटनीतिक महत्ता के रूप में सामने आया। जिन्हें अतीत के संघर्ष के हालात याद होंगे वे स्मरण कर सकते हैं कि सन 1960 के दशक की जंगों के दौरान गुटनिरपेक्ष समूह का कोई देश भारत के पक्ष में नहीं बोला। जबकि भारत गुटनिरपेक्ष आंदोलन का सह-संस्थापक और नेता था। सन 1971 में केवल सोवियत संघ ही सैद्धांतिक रूप से भारत के पक्ष में खड़ा हुआ। आज भारत को प्रमुख पश्चिमी देशों का ही नहीं बल्कि ऑस्ट्रेलिया का समर्थन है, रूस के साथ रिश्ते मित्रतापूर्ण हैं और अरब देशों का भी सकारात्मक हस्तक्षेप देखने को मिल रहा है। हमारी विदेश मंत्री इस्लामिक सहयोग संगठन की बैठक में सम्मानित अतिथि के रूप में शिरकत कर रही हैं जबकि पाकिस्तान के विदेश मंत्री विरोध स्वरूप इसका बहिष्कार कर रहे हैं।

कूटनीतिक हालात में बदलाव सन 1999 में करगिल और बिल क्लिंटन के दौर में शुरू हुआ और इसका श्रेय एक के बाद एक सरकारों और प्रधानमंत्रियों की कूटनीतिक निरंतरता को दिया जाना चाहिए। इनमें हमारे मौजूदा प्रधानमंत्री भी शामिल हैं। एक बाजार के रूप में हमारे देश का महत्त्व लगातार बढ़ रहा है, और पाकिस्तान की छवि बिगड़ी है। पूर्व अमेरिकी विदेश मंत्री के शब्द उधार लें तो उसे अंतरराष्ट्रीय 'सरदर्द' माना जा रहा है। अमेरिका में पाकिस्तान के पूर्व राजदूत हुसैन हक्कानी ने एक सच उजागर करते हुए कहा कि भारत के मिराज विमानों से किए गए हवाई हमले के बाद किसी देश ने पाकिस्तान के पक्ष में बयान जारी नहीं किया। बीते सप्ताह का सबसे बुरा हासिल था रेटिंग के भूखे टेलीविजन चैनलों का राष्ट्रवाद जिसने खबरों को खूब तोड़ा-मरोड़ा। समाचार चैनलों के एंकर अपने सुरक्षित स्टूडियो में बैठकर युद्ध की चीख-पुकार मचाते रहे। शहीद सैनिकों की पत्नियों ने जब-जब शांति और संवाद की बात कही तब-तब उनका मखौल उड़ाया गया। यह पुराना सिद्धांत है कि किसी को अपने ही प्रोपगंडा का शिकार नहीं होना चाहिए और यह उम्मीद की जानी चाहिए कि राष्ट्रीय सुरक्षा और अंतरराष्ट्रीय संबंधों के प्रभारियों के मस्तिष्क टीवी शो पर चीखने वालों की तुलना में शांत रहते होंगे। इन समाचार चैनलों ने ही कंधार अपहरण कांड के समय वाजपेयी सरकार पर दबाव बनाया था। उस वक्त कुछ अन्य आतंकियों के साथ जैश-ए-मोहम्मद के मौजूदा मुखिया तक को छोड़ना पड़ा था। उसकी कीमत देश को आज चुकानी पड़ रही है।

सच यही है कि पिछले दिनों हुई सैन्य झड़प में भारत को स्पष्ट जीत हासिल नहीं हुई। मोदी सरकार ने एक कदम आगे बढ़कर सीमा पार के आतंकवाद के खिलाफ आक्रामक प्रतिक्रिया देते हुए पाकिस्तान स्थित आतंकी ठिकानों पर हमला किया। परंतु हमें भी अपना एक लड़ाकू विमान गंवाना पड़ा। प्रधानमंत्री ने गैर जरूरी ढंग से पायलट प्रोजेक्ट की बात की और कहा कि अभी तो असली चीजें घटित होनी हैं लेकिन यह तय है कि अगर किसी वजह से सीधी जंग भी होती है तो भी भारत को उसमें स्पष्ट जीत हासिल नहीं हो सकती।

मिग-21 विमान गंवाने के बाद यह प्रश्न उठता है कि आखिर इतने पुराने विमान उड़ाकर विमान और पायलट दोनों को जोखिम में क्यों डाला जा रहा है। सशस्त्र बलों को उचित संख्या में समकालीन हथियारों से लैस न कर पाने से हम उचित प्रतिकार का मौका भी गंवा रहे हैं। इसके लिए यह कटु सत्य जिम्मेदार है कि रक्षा बजट, खासतौर पर हथियार खरीद का बजट काफी वर्षों से बहुत सीमित है। वित्त मंत्री का यह सवाल उचित है कि आखिर क्यों वैसी कार्रवाई नहीं करनी चाहिए कि जैसी अमेरिका ने ओसामा बिन लादेन को मारने के लिए की थी। इसका एक ही उत्तर है, क्षमताओं में जमीन आसमान का अंतर।

एक और घरेलू मुद्दे पर विचार करना होगा: क्या जम्मू कश्मीर में हमारी नीति कारगर है? आंकड़े बताते हैं कि वहां हिंसा और हत्या के मामले बढ़ रहे हैं। जमीनी रिपोर्ट बताती हैं कि कश्मीर घाटी में अलगाव की भावना बढ़ रही है। विपरीत वैचारिक ध्रुव वाले दलों की गठबंधन सरकार का अस्वाभाविक प्रयोग लंबा नहीं चल सका और अब राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू है। अगर घरेलू समर्थन नहीं होता तो राज्य में आतंकवाद नहीं पनपता। इस वास्तविकता की अनदेखी से कुछ हासिल नहीं होगा। इसके बजाय मामला और खराब होता जाएगा। खासतौर पर अगर देश के अलग-अलग इलाकों में कश्मीरी छात्रों और कामगारों के साथ दुव्यर्वहार का सिलसिला जारी रहा। कश्मीर समस्या को बिना कश्मीरियों का दिल जीते हुए हल नहीं किया जा सकता।

बिनय सिन्हा

आईडीबीआई बैंक का कैसे हो कायाकल्प?

आईडीबीआई बैंक को आईसीयू से हटाकर एचडीयू में स्थानांतरित किया जा रहा है। इस बैंक के भावी परिदृश्य पर विस्तार से नजर डाल रहे हैं **तमाल बंद्योपाध्याय**

आईडीबीआई बैंक लिमिटेड के लिए रखी गई भारतीय जीवन बीमा निगम (एलआईसी) की खुली पेशकश में कहा गया था कि निजी बैंकों के बारे में भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) के तमाम निर्देश और बैंकिंग अधिनियम के सभी प्रावधान इस पर लागू होंगे। इसका मतलब है कि आईडीबीआई बैंक को एक निजी बैंक मानते हुए उस पर ये नियम एवं दिशानिर्देश लागू होंगे। हालांकि आरबीआई इस बैंक को 'सार्वजनिक क्षेत्र के अन्य बैंक' की श्रेणी में रखे हुए है।

यह घटनाक्रम संकट में फंसे आईडीबीआई बैंक के समक्ष अस्तित्व की दुविधा पैदा कर देता है।

बैंक ने लगातार नौवीं तिमाही में अक्टूबर-दिसंबर 2018 के दौरान 4,185.5 करोड़ रुपये का शुद्ध घाटा उठाया था। इसके चलते सितंबर 2015 के बाद से उसका कुल घाटा बढ़कर 28,000 करोड़ रुपये हो गया। आरबीआई ने सितंबर 2015 में ही परिसंपत्ति गुणवत्ता समीक्षा करने के बाद बैंकों को मार्च 2017 तक तस्वीर साफ करने का निर्देश दिया था। आईडीबीआई बैंक का दिसंबर तिमाही में घाटा और अधिक होता लेकिन उसे कर के मद में चुकाई गई 1,620 करोड़ रुपये वापस मिल गई थी। इसने आखिरी बार सितंबर 2017 में 55.52 करोड़ रुपये का शुद्ध लाभ कमाया था।

एलआईसी ने जनवरी में खुली पेशकश के बाद अपनी हिस्सेदारी बढ़ाकर 51 फीसदी कर दी थी। उसने बैंक में सितंबर 2018 के बाद से छह किस्तों में 21,624 करोड़ रुपये डाले हैं। इसमें नई जान डालने के लिए उसे कितनी और रकम लगाने की जरूरत होगी? क्या यह फंसी हुई रकम पाने के लिए अपने पास रखे पैसे भी फेंकने का क्लासिक उदाहरण है?

साफ-साफ कहें तो आईडीबीआई बैंक के साथ सब कुछ बुरा ही नहीं है। कुछ मोर्चों पर हालात सुधरे भी हैं। पूंजी पर्याप्तता अनुपात का 12.51 फीसदी पर पहुंचना सबसे अहम सुधार है। भले ही बैंक का घाटा उठाने का सिलसिला जारी है लेकिन प्रावधान कवरेज अनुपात बढ़कर 75.21 फीसदी पर पहुंच चुका है। इसका मतलब है कि बैंक ने अपनी फंसी परिसंपत्तियों का तीन-चौथाई हिस्सा कवर करने के लिए रकम का प्रावधान कर रखा है और भविष्य में ऐसी परिसंपत्तियों की वसूली होने पर उसका मुनाफा ही बढ़ेगा।

असल में, दिसंबर तिमाही में बैंक को हुए भारी घाटे की बड़ी वजह भारी-भरकम रकम का प्रावधान थी। बैंक का सकल फंसा कर्ज मामूली गिरावट के साथ आवंटित कर्ज का 29.67 फीसदी हो गया और इसका शुद्ध फंसा कर्ज भी 14.01 फीसदी रहा है। जब किसी बैंक का कर्ज बढ़ता है तो खराब परिसंपत्तियों का अनुपात कम होने का आभास होता है लेकिन आईडीबीआई बैंक का ऋण पोर्टफोलियो कम हो रहा है।

एक और सुखद संकेत यह है कि इसके कुल ऋण खाते में भले ही ढांचागत क्षेत्र की हिस्सेदारी 18 फीसदी है लेकिन कुल ऋण में खुदरा कर्जों का अनुपात 48 फीसदी हो चुका है जबकि दो साल पहले यह 41 फीसदी था। इस दौरान कम लागत वाले चालू एवं बचत खातों की हिस्सेदारी भी जमा का 38.36 फीसदी पर पहुंच चुकी है जबकि दो साल पहले यह 36.14 फीसदी था। अगर यही दर कायम रहती है तो आईडीबीआई बैंक को अगली दो तिमाहियों में आरबीआई के त्वरित उपचारात्मक कदम (पीसीए) दायरे से बाहर आ जाना चाहिए। पीसीए में शामिल बैंकों पर कई तरह की रोक होती है।

सवाल है कि क्या यह समय जश्न मनाने का है? चिकित्सकीय शब्दावली में कहें तो आईडीबीआई बैंक को शायद गहन चिकित्सा कक्ष (आईसीयू) से हटाकर उच्च निर्भरता कक्ष (एचडीयू) में भेजा जा रहा है। एचडीयू में भी लगातार गहन चिकित्सा की जरूरत होती है लेकिन वहां पर नर्स और रोगियों का अनुपात कम होता है।

सिद्धांत रूप में एलआईसी के हाथों आईडीबीआई बैंक का अधिग्रहण दोनों के लिए आश्चर्यजनक हो सकता है। दोनों के कारोबार में सामंजस्य बिठाने के लिए एक कार्यबल बनाया गया है। एलआईसी ने देश भर में फैली आईडीबीआई शाखाओं में बीमा पॉलिसी बेचने का प्रशिक्षण सत्र चलाना शुरू भी कर दिया है। तकनीकी रूप से इसे बैंकश्योरेंस कहते हैं जिसका मतलब एक बैंक एवं एक बीमा कंपनी के बीच हुए करार से होता है। इस समझौते के तहत बैंक अपने ग्राहकों को बीमा कंपनी की पॉलिसी बेचने में मदद करता है। यह साझेदारी दोनों पक्षों के लिए लाभदायक होती है क्योंकि बैंकों को बीमा उत्पादों की बिक्री से अतिरिक्त राजस्व मिलता है और बीमा कंपनी को भी सेल्स टीम बढ़ाए बगैर ग्राहक आधार बढ़ाने का मौका मिल जाता है।

आईडीबीआई बैंक की 1800 से अधिक शाखाओं की मौजूदगी और इसके 14 करोड़ ग्राहक एलआईसी के लिए बीमा बेचने में मददगार साबित होंगे। दूसरी तरफ बैंक भी एलआईसी के विशाल नेटवर्क का इस्तेमाल अपने खुदरा कर्जों के लिए कर सकता है। एलआईसी के पास बड़ी मात्रा में दीर्घावधि रकम है जिसकी मदद बैंक अपने प्रोजेक्ट कर्जों के लिए कर सकता है। भविष्य में एलआईसी अपनी मॉर्टगेज इकाई का बैंक में विलय भी कर सकती है। आईडीबीआई बैंक के कुल कर्जों में से आवासीय ऋण की हिस्सेदारी 11.50 फीसदी है।

ये तमाम संभावनाएं सिद्धांत रूप में मुमकिन हैं। लेकिन एलआईसी के पास बैंक चलाने का कोई अनुभव नहीं है और आईडीबीआई बैंक को भी बैंकिंग संचालन ठीक तरह से आता तो ऐसे हालात पैदा नहीं हुए रहते। इसका मतलब है कि बैंक का संचालन पेशेवर प्रबंधन के पास होना चाहिए जो एक काबिल बोर्ड के अधीन काम करे। एलआईसी से आने वाले इकलौते निदेशक को छोड़ दें तो अभी तक बैंक के बोर्ड का पुनर्गठन नहीं हुआ है।

अब इस बैंक में सरकारी की हिस्सेदारी घटकर भले ही 46.46 फीसदी पर आ गई है लेकिन बैंक के मुखिया अक्सर वित्त मंत्रालय के वित्तीय सेवा विभाग में ही नजर आते हैं। उन्हें वहां पर क्यों दिखना चाहिए? आईडीबीआई बैंक को बचाने के लिए किए गए इस प्रयोग की सफलता के लिए कंपनी संचालन अहम है। अगर इसका संचालन पहले की ही तरह होता रहा और एलआईसी सरकार का प्रतिनिधि ही बनी रही तो फिर इसका कोई भविष्य नहीं है।

अक्टूबर 2018 में बैंक के एमडी एवं सीईओ नियुक्त हुए राकेश शर्मा पखवाड़े भर में सेवानिवृत्त होने वाले हैं। उनके पूववर्ती बी श्रीराम का कार्यकाल तो महज तीन महीने ही रहा था। इतने अहम मोड़ पर बैंक के सीईओ का इतना कम कार्यकाल होना गंभीरता नहीं दर्शाता है।

एलआईसी को दिसंबर 2031 तक अपनी हिस्सेदारी घटाकर 40 फीसदी पर लानी होगी। 12 साल का वक्त काफी लंबा है लेकिन एलआईसी के लिए इस निवेश का लाभपरक होना इस पर निर्भर करेगा कि वह बैंक का संचालन कैसे करता है?

अप्रैल 2001 में जर्मनी की बीमा कंपनी आलियांज एसई ने ड्रेस्डनर बैंक को खरीदकर बैंकिंग, बीमा और निवेश बैंकिंग तीनों कारोबार का समावेश किया था। इसके जरिये दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की सोच थी लेकिन ड्रेस्डनर पर 35.5 अरब यूरो के कर्ज ने ऐसा होने नहीं दिया। नतीजतन अगस्त 2008 में आलियांज ने इस बैंक को 9.8 अरब यूरो में बेच दिया। यह अलग बात है कि अब आईडीबीआई बैंक के पास खोने के लिए कुछ अधिक नहीं है।

फरवरी 2016 के बजट भाषण में वित्त मंत्री अरुण जेटली ने आईडीबीआई बैंक के कायाकल्प की जिक्र किया था। देखते हैं कि यह कायाकल्प किस तरह आकार लेता है?

(लेखक बिज़नेस स्टैंडर्ड के सलाहकार संपादक, लेखक एवं जन स्मॉल फाइनैंस बैंक लिमिटेड के वरिष्ठ परामर्शदाता हैं)

साप्ताहिक मंथन

टी. एन. नाइनन

सोशल मीडिया-चैनलों पर नफरत फैलाने के लिए हम जिम्मेदार

आप किसी भीड़भाड़ वाले कॉफी शॉप में घुसिए। वहां पर दर्जनों लोग समूह में या अकेले बैठे हुए मिल जाएंगे। उनमें से कुछ लोगों के बीच हो रही बातचीत आप सुन भी सकते हैं। कोई अपनी निजी समस्याओं पर चर्चा कर रहा होता है तो कोई राजनीतिक मुद्दों पर बहस में मशगूल होता है। इस दौरान आपको कुछ ऐसा सुनाई देता है जिससे आप इत्तफाक नहीं रखते हैं या नापसंद करते हैं। फिर आप उस व्यक्ति से बहस में उलझ जाते हैं। थोड़ी ही देर में आप उस व्यक्ति के साथ गाली-गलौज करने लग जाते हैं। और फिर वह पूरा कॉफी शॉप जंग का एक मैदान बन जाता है। चारों तरफ अफरातफरी मच जाती है, कप टूट-फूट जाते हैं और मेजें पलट जाती हैं। उसके बाद उस दुकान के मालिक के पास जगह की सफाई कराने के सिवाय कोई चारा नहीं रह जाता है। जब वह नए सिरे से अपनी दुकान खोलने ही वाला होता है कि उसे कह दिया जाता है कि उसकी वजह से आस-पड़ोस प्रभावित हो रहा है। अगर वह अपने ग्राहकों को काबू में नहीं रख सकता है तो उसे कॉफी शॉप चलाने की इजाजत नहीं मिलेगी।

सोशल मीडिया कंपनियों को भी कुछ इसी तरह की गड़बड़ी का सामना करना पड़ रहा है। ये कंपनियां एक प्लेटफॉर्म मुहैया कराती हैं और कॉफी शॉप के उलट यह मंच नि:शुल्क होता है। उस प्लेटफॉर्म पर जाकर लोग बात करते हैं, बहस करते हैं, झगड़ा करते हैं और अपने जैसी सोच वालों के साथ वक्त बिताते हैं। लेकिन इस मंच के एक सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म होने के चलते वहां पर सभी तरह के लोग भी मौजूद होते हैं। उन्हें आपकी कही बातें पसंद नहीं आती हैं या आपको उनकी बातें नागवार गुजरती हैं। ऐसे में किसी रात्रिभोज की तरह मामला शिष्ट असहमति पर जाकर नहीं खत्म होता है। एक-दूसरे से असहमत हुए लोग गाली-गलौज करने लग जाते हैं और कई बार उनका यह विषवमन मारपीट, हत्या और दंगे की भी शक्ल ले लेता है।

इसके लिए क्या आप इस मंच को दोषी ठहरा सकते हैं? निश्चित रूप से तकनीकी कंपनियां संवाद के इस मंच को बेहतर संचालित कर सकती हैं। फेसबुक के पास हमारे बारे में तमाम आंकड़े मौजूद हैं। वहीं अपशब्दों के इस्तेमाल, धमकी देने और फर्जी वीडियो के प्रसार पर ट्विटर का कोई काबू ही नहीं दिखता है। लेकिन क्या ट्विटर के सीईओ एवं संस्थापक जैक डोर्सी को संसदीय समिति के समक्ष पेश होने से हालात सुधर जाएंगे?

मीडिया मंत्र

वनिता कोहली-खांडेकर

समस्या हम लोग हैं। शायद अब वक्त आ गया है कि एक नागरिक, दर्शक और एक सामान्य इंसान होने के नाते हम अपने व्यवहार की जिम्मेदारी लेना शुरू करें। शायद अब वक्त आ गया है कि हम 'व्हाट्सऐप यूनिवर्सिटी' से हासिल ज्ञान के आधार पर इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति और अन्य मुद्दों पर चर्चा के बुनियादी नियम तय कर लें। अधिकांश दिनों में सोशल मीडिया पर होने वाली बहसों में शामिल लोगों के पास या तो संबंधित जानकारी ही नहीं होती है या फिर अधकचरा ज्ञान होता है। किसी भी फर्जी संदेश या वीडियो पोस्ट के बारे में तथ्यों की पुष्टि के लिए 3-5 मिनट ही लगते हैं लेकिन आप ऐसा तभी करते हैं जब आप अपनी पुरानी धारणाओं से मेल खाने वाली पोस्ट के जाल में उलझना नहीं चाहते हैं।

सच्चाई यह है कि मास मीडिया, खासकर समाचार मीडिया ने भारत और भारतीयों दोनों को नाकाम किया है। भारत में कोई समाचार चैनल या समाचारपत्र लाना जितना आसान हुआ है, उनकी गुणवत्ता उतनी ही खराब हुई है। भारत के पास दुनिया भर में सबसे ज्यादा 400 समाचार चैनल हैं जिनमें से अधिकांश चैनल अब पत्रकारिता के बुनियादी नियमों का भी पालन नहीं करते हैं। कई चैनल सरकार के प्रवक्ता बन चुके हैं, दूसरे चैनल नफरत फैलाने और भीड़ को उकसाने में लगे रहते हैं। उनमें से एक भी चैनल को किसी संसदीय पैनल ने नहीं बुलाया और न ही उनका लाइसेंस निरस्त किया गया। इन चैनलों को समाचार चैनलों की प्रतिनिधि संस्था न्यूज़ ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन (एनबीए) से भी कोई नोटिस नहीं भेजा गया है। एनबीए इन चैनलों की अपने स्तर पर गठित नियामक संस्था है लेकिन अपने मकसद में काफी हद तक नाकाम रही है।

खबरों के प्रसारण व्यवसाय में सबसे बड़ी समस्या स्वामित्व से जुड़ी हुई है। भारत के आधे से अधिक समाचार चैनलों का स्वामित्व ऐसे लोगों या कंपनियों के पास है जिनकी अच्छी गुणवत्ता वाली पत्रकारिता में कोई रुचि ही नहीं है। चैनल लाने के पीछे सोच यही होती है कि प्रभाव पैदा किया जा सके, अपने लिए कुछ फायदे उठाए जा सकें या दुष्प्रचार फैलाने का माध्यम बन सके। भारत में तेजी से फैलते टेलीविजन उद्योग में खबरों का हिस्सा तो बहुत ही छोटा और गैर-लाभदायक समूह में है। जांच-पड़ताल, विश्लेषण और संबंधित जगह पर जाकर खबर देने में यकीन करने वाला कोई भी ईमानदार समाचार संस्थान बढ़िया फंडिंग वाले उकसाऊ चैनलों से प्रतिस्पर्द्धा भला कैसे कर सकता है?

तमाम बहसों में इस पर खूब चर्चा होती है कि समाचार चैनल किस तरह टीवी रेटिंग प्वाइंट (टीआरपी) के पीछे भागते रहते हैं। टीआरपी असल में टीवी दर्शकों की संख्या मापने का जरिया है। ऐसे में चैनल अगर टीआरपी की फिक्र नहीं करेंगे तो कौन करेगा?

ऐसे में समय आ गया है कि हम दर्शक एवं भारतीय नागरिक के तौर पर सोशल मीडिया या समाचार चैनल पर फैलाई जा रही नफरत और बुरे बरताव को खारिज कर दें। एक पत्रकार, संपादक, विशेषज्ञ, अजनबी शख्स या आपके मित्र की किसी मुद्दे पर आपसे अलग राय हो सकती है लेकिन किसी भी व्यक्ति को हिंसा या अपशब्दों के जरिये अपनी असहमति जाहिर करने की इजाजत नहीं दी जा सकती है। नफरत फैलाने में क्यों शामिल हों? अगर हम ऐसा करते हैं तो फिर ट्विटर या फेसबुक से यह उम्मीद क्यों करें कि वे हमारे समाज की गंदगी साफ करेंगे। वह भी तब जब हम असहमत होने पर भी सहमत न हो सकें।

कानाफूसी

अदालत पहुंचा इतिहास

इन दिनों ऐतिहासिक पात्रों की सर्वोच्च न्यायालय यात्रा का मानो सिलसिला सा चल रहा है। पिछले दिनों मुगल सल्तनत के एक वारिस शीर्ष न्यायालय में देखे गए थे तो बीते गुरुवार को एक सज्जन महात्मा गांधी की वेशभूषा बनाए हुए न केवल न्यायालय परिसर में नजर आए बल्कि उन्हें एक अदालती कक्ष में प्रवेश करते हुए भी देखा गया। यह तो पता नहीं चला कि वह किस मामले की सुनवाई में अदालत आए थे लेकिन उनके आगमन ने कई लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। गौरतलब है कि इससे पहले एक सज्जन अदालत में आए थे और उन्होंने दावा किया था कि वह आखिरी मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर की छठी पीढ़ी के सदस्य हैं। वह राम जन्मभूमि मामले की सुनवाई के दौरान वहां पहुंचे थे।

कड़ी चुनौती

केंद्रीय मंत्री हर्षवर्धन ने नई पीढ़ी के उद्यमियों और नवाचारियों के लिए एक नई चुनौती पेश की है। उनका कहना है कि इन उद्यमियों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे 2022 तक एकल इस्तेमाल वाले प्लास्टिक का उपयोग पूरी तरह समाप्त करने के लिए काम करेंगे। उन्होंने यह बात देश को प्लास्टिक मुक्त बनाने संबंधी एक गीत लॉन्च करते वक्त कही। पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्मृति मंच नामक एक स्वयंसेवी संगठन ने यह गीत तैयार किया है। यह संगठन कई सामाजिक और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों को लेकर काम करता है। इसे सात भाषाओं हिंदी, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगू, मलयालम और कन्नड़ में लॉन्च किया गया है। इस अवसर पर मंत्री ने इस बात पर भी जोर दिया कि प्लास्टिक कचरे का प्रबंधन और पुनर्चक्रण किया जाए।

आपका पक्ष

देश का खाद्यान्न उत्पादन होगा कम

देश का खाद्यान्न उत्पादन पिछले साल के मुकाबले वर्ष 2018-19 में एक प्रतिशत कम होने का अनुमान है। सरकार ने खाद्यान्न उत्पादन 28 करोड़ 13 लाख 70 हजार टन रहने का अनुमान जताया है। इस साल दलहन और मोटे अनाजों का उत्पादन भी कम रहने का अनुमान लगाया गया है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार पिछले साल फसल वर्ष (जुलाई से जून) में 28 करोड़ 48 लाख 30 हजार टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ था। पिछले साल से करीब एक प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादन कम होने का नुकसान तथा फायदा किसानों को होगा। बाजार में खाद्यान्न अधिक पहुंचने से किसानों के इसके दाम कम मिलते हैं लेकिन फसल कम पहुंचने से किसानों को इसका फायदा होता है। वहीं इसके उलट आम आदमी भी बाजार से प्रभावित होता है। किसानों को अधिक फायदा मिलने पर आम आदमी की जेब कटने लगती हैं क्योंकि उन्हें अधिक कीमत देनी पड़ती है। फसल उत्पादन कम होने से खाद्यान्न संकट भी हो सकता है। देश में पिछले कुछ वर्षों में खाद्यान्न, तिलहन, कपास, गन्ना, फल तथा सब्जियों की पैदावार काफी हुई थी जिससे किसानों को अपनी उपज बेचने के बाद कम दाम मिले थे। उचित कीमत की मांग पर किसान सड़कों पर आलू, प्याज, टमाटर तथा सब्जियां फेंक कर अपना विरोध जता रहे थे। फसल की पैदावार कम होने की स्थिति में किसानों को अच्छे दाम तो मिल जाते हैं लेकिन उसकी भरपाई पूरे देश को अधिक कीमत चुका कर करनी पड़ती है। इससे आम आदमी का घरेलू बजट बिगड़ जाता है, महंगाई बढ़ने लगती है। अत: सरकार को ऐसी व्यवस्था कायम करनी चाहिए जिससे उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ किसानों की आमदनी भी बढ़ सके।

मोहित कुमार, नई दिल्ली

सरकार ने इस साल खाद्यान्न उत्पादन एक प्रतिशत कम रहने का अनुमान जताया है

सही जगह जोश दिखाने की जरूरत

पुलवामा में आतंकी हमले के बाद देश की जनता में आक्रोश है। लोगों में देश की रक्षा करने के लिए काफी जोश दिख रहा है। लेकिन देश की रक्षा में इस जोश का उपयोग प्रत्येक नागरिकों को उनकी जिम्मेदारी समझाकर किया जा सकता है। इस राष्ट्रीय उर्जा का उपयोग नेतृत्व क्षमता का विकास करने, आर्थिक रूप से स्टार्टअप, मेक इन इंडिया आदि योजनाओं का हिस्सा बन कर, राजनीतिक तौर पर देश को तोड़ने व आतंकवादी ताकतों के खिलाफ सख्त कानून बनाकर किया जा सकता है। साथ ही बायोपिक फिल्में व राष्ट्रीय घटनाओं का चित्रण कर नवयुवकों में ऊर्जा का संचार किया जा सकता है और मातृभूमि का कर्ज अदा किया जा सकता है।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।